भारतीय चित्रकला में प्रधान सांगीतिक तत्व–लय एवं ताल

डॉ. महेश चन्द्र पाण्डे
एसोसिएट प्रोफेसर ,संगीत विभाग
एम.बी.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हल्द्वानी उत्तराखण्ड

१. प्रस्तावना

रंग और रेखाओं द्वारा भी लय की उत्पत्ति की जा सकती है। चटकीले और धुधले रंगों के व्यवस्थित प्रयोग से कलाकार दर्शक को दिशा प्रदान कर सकता है। मात्र रेखाएं और रूप ही लय पैदा करने में समर्थ नहीं है, उन्हें रंग की भी आवश्यकता होती है। जीवन में जिस प्रकार विश्राम, यात्रा, कार्य और शयन आदि का महत्व है, उसी प्रकार लय में भी तनाव, विश्राम आदि का प्रयोग होता है। लय के द्वारा जीवन के प्रत्येक पक्ष को गति मिलती है। लयहीन जीवन मृत्यु का द्योतक है, यह प्रलय में ही सम्भव है। यहां तक कि जीवन की पूर्णता ही लय के बिना समाप्त हो जाती है। लय की पुनरावृत्ति से जीवन की गति का मार्ग तो बनता ही है और सुगमता के साथ विश्राम भी मिलता है। जीवन को यदि लय की श्रेणी में रखा जाय तो लय और क्रम का महत्व सामने आ जाता है।

सभी कलाकृतियों का उदेश्य आनन्द की अनुभूति कराना है। इस आनन्दानुभूति में कला का तकनीकी ज्ञान विशेष सहायक होता है। वैसे साधारण व्यक्ति भी किसी कलाकृति को देखकर कुछ न कुछ प्रभावित होता है। किन्तु कलागत विशेषताओं से परिचित व्यक्ति ही उनके मर्म एवं गूढ़ दर्शन को समझने में समर्थ हो पाता है। अतः कलाकृति के रसास्वादन हेतु कला सम्बन्धी तत्वों एवं नियमों की जानकारी अति आवश्यक है। चित्रकला में प्रयुक्त प्रमुख सांगीतिक तत्वों में लय एक प्रमुख तत्व है।

२. लय (Rhythm)

गति अथवा लय संगीत का प्रमुख एवं प्रथम तत्व है, क्योंकि संगीतोपयोगी ध्वनियों की उत्पति में नियमित ध्वनि आंदोलनों का कम्पन अनिवार्य है अन्यथा वह ध्वनि संगीतोपयोगी नहीं होगी। गति के कारण ही शरीर का कण–कण निरन्तर कम्पित होता रहता है। गति न केवल संगीत की मुख्य भित्ति है अपितु सारा जीवन ही उसी पर अवलम्बित है। सम्पूर्ण वस्तु जगत् (ब्रह्माण्ड) गतिमान है। चेतना गति की प्रतीक है और इसका मूलाधार गति है जो अपने शाश्वत नियमों के विधान में बंधी है।

आचार्य लालमणि मिश्र ने अपने शोध–ग्रन्थ **भारतीय संगीत वाद्य** में लय की परिभाषा करते हुये कहा है कि ''नियमित गति ही लय है, जो प्रबल–अबल की भावना की जननी है। गति का यह बल–अबल अनजाने ही प्रकट होता है, मानों यह कानों की इच्छाओं की स्वाभाविक पूर्ति है। डॉ0 कुमार विमल ने दो क्रियाओं के बीच पड़ने वाले अन्तराल को लय कहा है। इस लय से ही ताल और गीत को गति **(Melic impulse)** मिलती है। लगभग इसी प्रकार डॉ0 इन्द्राणी चक्रवर्ती ने भी अपने एक लेख में लय का अर्थ, क्रिया के पश्चात् या बीच की विश्रांति अर्थात् क्रिया विरति का 'लय' कहा है। क्रिया में विश्रांति होने के काल के गुरू अवयवों का लघु में लीन होना ''लय'' है। लय की धारणा लघु कालक्रम के बिना सम्भव नहीं है। आचार्य भरत ने लय को कालकृत माना है–

ततः कला कालकृतो लय इत्यभिसंज्ञितः (नाट्यशास्त्र 31–6)

आचार्य अभिनवगुप्त ने विलंबित आदि काल भेदों की संपादना को 'कालकृत' कहा है। क्रिया के पूर्वकथन काल में जो अन्तराल है उसे लय कहा है। अर्थात् दो क्रियाओं के बीच में पड़ने वाला अन्तराल लय कहलाता है।

विश्रांतियुक्तया काले क्रियया मानमिष्यते 5//43
क्रियानन्तर विश्रान्तिर्लयः स त्रिविधो मतः।
संगीत रत्नाकर 5//44

आचार्य रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लय की परिभाषा करते हुये कहा है कि यह एक संगठित , गतिशील शक्ति है, जो महाकाली के क्रीड़ित लीला भाव को उत्पन्न, सन्तुलित और प्रेरित करती है, महाकाली एक ऐसी शक्ति है जो इस बदलती वास्तविकता को उत्पन्न, पोषित और विनाशित करती है।

एडवर्ड मैकडौवेल ने लय के सम्बन्ध में कहा है–''लय एक विचार को अंकित करता है, लय में संकल्प एवं उद्देश्य है। लय के पीछे उसका मुख्य भाग विचार और शक्ति है, यह एक अभिनय है जो काल के आन्तरित उत्तराधिकार के पात्र को अभिनीत अथवा प्रदर्शित करता है।

लय का सामान्य अर्थ–है लीन होना, घुलमिल जाना अर्थात् संयोग, एकरूपता अथवा मिलना । जब हमारा मन किसी वस्तु अथवा विचार में लीन हो जाता है, तो हम कह सकते है कि वह लय की स्थिति में है। वाह्य रूप से किसी क्रिया और आन्तरिक रूप से किसी भाव के साथ तादात्म्य कर लेना ही लय है। जैसा भाव होता है, उसी के अनुरूप शारीरिक चेष्टा होती है। ये चेष्टाएं गति और वाणी में अपना स्वरूप व्यक्त करती है। इसी से कलाओं में लय की सृष्टि सम्भव होती है। उसी को देखकर दर्शक भी लय का अनुभव करता है। इस प्रकार मानव में उत्पन्न हुई लय कलात्मक माध्यम के सहारे पुनः मानव पहुंच जाती है।

रिद्म (लय) की व्युत्पत्ति प्राचीन ग्रीक शब्द 'रहित' से हुई है, जिसका अर्थ है–'प्रवाह' अंग्रेजी में 'लय' के लिए 'रिद्म' शब्द प्रयुक्त होता है। पाश्चात्य परम्परा में 'लय' का अर्थ है–समान अथवा उन्हीं अवयवों की पुनरावृत्ति में उत्पन्न निरन्तरता। इसकी उत्पत्ति गति/प्रवाह और यति/विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होती है। लय का स्वरूप तत्वतः एक साथ गत्यात्मक एवं आवृत्तिमूलक होता है और इसकी व्याप्ति दिक् और काल दोनों में है। संगीत में लय के 3 भेद है – द्रुत , मध्यम तथा विलम्बित । यह गति के भी भेद हो सकते है। गीत के आवर्तन में लय निहित रहती है और आवर्तन के अनेक रूप हो सकते है। स्थूल आवृत्ति के अन्तर्गत सूक्ष्मतर प्रत्यावर्तनों की स्थिति रह सकती है।

दृश्यकलाओं में लय का अर्थ रेखाओं, रूपों अथवा रंगों द्वारा व्यवस्थित किसी ऐसे सरल एवं सुसम्बद्ध, आवृत्तिमय तथा संगीतमय पथ से है जिसके सहारे दृष्टि क्रमशः अग्रसर होती है। यह गति पुनरावृत्ति, क्रमिक आरोह–अवरोह, अविरल रेखा प्रवाह और विकीरण की स्थितियों में लयात्मक हो सकती है।

३. ताल (Taal)

भारतीय संगीत में 'ताल' का प्रयोग कब से आरम्भ हुआ, इस पर प्रामाणिक रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में तालों का इतना विस्तृत विवेचन हुआ है कि इसके पूर्व ताल का विकास न हुआ हो, यह सम्भव नहीं है। ईसा के सहस्त्र वर्ष पूर्व भी भारतीय संगीत उन्नत अवस्था में था। सिन्धु घाटी के उत्खनन से प्राप्त वीणाएं, सप्तछिद्र वंशियां, मृदंग, करताल, तांबे की नर्तकी–मूर्तियां तत्कालीन संगीत–अभिरूचि का परिचय देती है। वैदिककालीन 'गान' शब्द को स्पष्ट करते हुए जैमिनि का विचार है कि गान एक आभ्यन्तरिक प्रयत्न या कार्य है। प्राणवायु नाभि से चलकर कण्ठ तक आती है और उसके आहत होने पर शब्दों का सृजन होता है। इसके अन्तर्गत कण्ठ में स्वरों का निर्माण होता है एवं कण्ठ ही वह माध्यम है जिसके द्वारा प्राणवायु गानोपयोगी नाद की सृष्टि करती है। सामगान लिपि में 1.2,3

आदि संख्याओं को छंद के ऊपर टीपकर गति या लय के निर्देश देने की परम्परा रही है, जैसे गायत्री साम का प्रदर्शन इस प्रकार है –

11	1	2	1	3	1	2	2	1	3	1	2
त	त्स			वि	तु	र्व	रे		ण्यं	भ	र्गो
3	1	2	1	1	1	1	2	3	1	3	1	1	1
देवस्य		धीमहि				धियो	यो	नः	प्र		चोद्यात्।।		

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि इस काल में भी संगीत का प्रचार था और रागरूपों के समान स्वरों के निश्चित क्रम अवश्य थे। रागात्मकता के साथ लयात्मकता का विशेष ध्यान रखा जाता था। यही लयात्मकता भरतकालीन तालशास्त्र की जननी है।

वेदों में विविध लयवाद्यों का विशद उल्लेख मिलता है किन्तु तत्कालीन ताल स्वरूपों का कोई विवरण नहीं मिलता। सामवेद भारतीय सांगीतिक परम्परा का प्रथम प्रधान ग्रन्थ है क्योंकि इस वेद के प्रत्येक मंत्र और ऋचा को आज तक सांगीतिक स्वरूप में उच्चारण करते है। सामगान में द्रुत, लघु, गुरू, प्लुत आदि मात्राओं को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। ईसा से 600 वर्ष पूर्व भी गन्धर्व, किन्नर एवं अप्सराएं संगीत में लयात्मक स्वरूपों का विधिवत् अभ्यास करती थीं। नारद, तुम्बरू, विश्वखिल, विश्वावसु, हाहा, हुहू गन्धर्वो का उल्लेख पौराणिक युग तक विद्यमान है। सामगान के माध्यम से ऋचाओं का पाठ करने के लिए दो ग्रंथ थे– प्रथम का नाम छंद और दूसरे का नाम उतरा था। लय–गति हेतु छंदों का महत्व इसी से स्पष्ट हो जाता है। वैदिक और लौकिक संगीत (गायन, वादन, नृत्य) में मात्रा गिनकर हाथ से ताली देने की प्रणाली थी। वैदिककालीन संगीत हेतु ताल नियमों का जो व्यवस्थित क्रम था वह सचमुच महत्वपूर्ण एवं अनुकरणीय है। गायन क्रिया के अनुकूल श्वास–प्रश्वास नियन्त्रण की प्रणाली थी जिसे ''पार्वत'' कहते थे एवं ह्रस्व, दीर्घ तथा प्लुत लक्षण की दृष्टि से तत्कालीन मात्राओं के नाम जैसे ¼ या अणुद्रुत, ½ या द्रुत या ह्रस्व, 1 ½ या अर्ध्यर्घ, 2 या दीर्घ, 2½ या अर्धतिस्त्र, 3 या प्लुत एवं 3 ½ या अर्धचतस्त्र आदि दिए जा सकते है।

रामायण एवं महाभारत काल में संगीत का विशेष आदर था। रामायण को गीतकाव्य से अभिहित किया जा सकता है क्योंकि रामायण के उत्तरकाण्ड में जब राम ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था उस समय स्वर ताल से युक्त रामायण का गान किया गया –

कलामात्रविशेषज्ञां ज्योतिषे च परंगताम्।
क्रिया कल्प विदश्चैव तथा कार्य विशारदान्।।

उपर्युक्त उद्धरण से तत्कालीन लयतत्वों का महत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है। वाल्मीकि द्वारा मध्यम से द्रुत, मध्यम से विलम्बित लय का सुन्दर विवेचन हुआ है। संगीत में शुद्ध उच्चारण एवं विभिन्न लयसाम्यों का इतना सफल निर्वाह लव–कुश के संगीत में उल्लेखनीय है। उत्तरकाण्ड में 71वें सर्ग में तालयुक्त रामचरित गान का उल्लेख है–

तन्त्रीलसमायुक्तं त्रिस्थान करणान्वितम्।
संस्कृतं लक्षणोपेतं समताल समन्वितम्।।

महाभारत के अनुशासन पर्व (125/191) में प्रदत्त ताल देने की रीति उल्लेखनीय है–

पाणितालसतालश्च शम्यातालैहि समयस्त था।
संप्रहृष्टैर्हि प्रवृत्यादि्भः सर्वस्तत्रतिर्षध्यते।।

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र (31/29) में विशुद्ध तालों का उल्लेख किया है। शक्या या ताल क्रिया का उल्लेख भी नाट्यशास्त्र (39/38) में है। कई विद्वानों के मतानुसार बाहर 'पटह' के एकत्रीकृत शब्द को 'नन्दी' या 'नान्दी' कहा गया है। हरिवंश में बल्लकी, मृदंग, तूर्य, भेरी, पणव, झर्झरी, डिमडिम आदि लय वाद्यों का विवरण है। गीत– वाद्या व नृत्यों में लय और ताल की रक्षा का विशेष महत्व उल्लेखनीय है, जैसे– **लय ताल सर्मश्रुत्वा** (2/93/25) श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में **''मृदंगवीणामूरजवेणुतालदरस्वतैः''** (श्लोक क्रमांक 20/1) शब्दों में ताल का महत्व प्रतिष्ठित है। हिन्दुस्तानी संगीत में ताल का उद्गम शब्दों की समय–सूचक मात्रा, लय के विराम और गति के अन्तर्गत हुआ है।

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति 'तल' धातु से हुई है। संस्कृत आचार्यो ने 'मा' धातु से 'मात्रा' शब्द का एवं रंजक 'चन्द' धातु से 'छंद' शब्द की व्युत्पत्ति की है। विभिन्न विद्वानों के मतानुसार गीत, वाद्य, नृत्य तीनों की प्रतिष्ठा ताल पर हुई है।

'संगीतार्णव' में 'ताल' शब्द की निष्पत्ति ताण्डव (पुरूष) नृत्य से 'ता' तथा लास्य (स्त्री) नृत्य से 'ल' वर्णो के संयोग से मानी है। संगीतदर्पण में 'ताकार' से शंकर या शिव और 'लकार' से पार्वती या शक्ति–दोनों का योग 'ताल' कहा गया है।''रागार्णव'' में ''**उभयकरतला–घातोत्पन्नं**'' ध्वनि को ताल ग्रहण करने की क्रिया कहा है। ग्रन्थकार ने 'तल्' शब्द के साथ 'आम्' प्रत्यय द्वारा 'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति की है। नरहरि चक्रवर्ती ने '**भक्ति रत्नाकर**' में 'त' कार शरजन्मा अर्थात् कार्तिकेय, 'आ' कार विष्णु एवं 'ल' कार मारूत–इन तीनों देवताओं द्वारा ''ताल'' शब्द को अधिष्ठित किया है। ताल शब्द की व्युत्पत्ति में ऐसे लक्षण प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध है। जिन तथ्यों का आधार लिया गया है, मूलतः उनके भावों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। अखण्ड कालगति को छन्द या पदों में विभाजित करने के जो प्रयोग हुए, उन्हें ही ताल कहा गया–

''कालस्य एक द्वित्रयादिमात्रोच्चारण नियमितस्य
क्रियायाः परिस्पन्दनामिकायाः परिच्छेदहेतुस्तालः।।''

संगीत में छंद और ताल ही यर्थाथतः स्वरों को गति प्रदान करते है। ताल संगीत को एक निश्चित नियम या समय में बांधता है। काल–क्रिया के माप को ही ताल कहते है, जैसा 'अमरकोष' में उल्लिखित है–**'तालः कालक्रिया मानम्।'** जीवन उसका लक्ष्य है। तालहीन संगीत विश्रंखल संगीत की श्रेणी में आता है। ताल संगीत में विभिन्न सौन्दर्यपूर्ण चयन–शैलियों का विकास करता है ; संगीत को अनुशासित, सुगठित, स्थायी एवं चमत्कारिक बनाने में लावण्य का कार्य करता है। यही कारण तथा आधार है कि भविष्य के लिए ताल के माध्यम से संगीत को कायम रखा जा सकता है। निश्चित ताल गति के फलस्वरूप ही संगीत के क्रमिक आरोह–अवरोह और विराम आदि अत्यंत प्रभावोत्पादक हो जाते है। तभी यह संभव हुआ है कि संगीत में रस निष्पत्ति झलकती है। समस्त रस तालों की विभिन्न गतियों में बंधे है। इस बात की पुष्टि 'नारदार्थ रागमाला' में भी होती है। ध्रुपद के खयाल गायक विस्तृत तालहीन आलापों में '**लीयते परमानन्दे यथात्मा सा परा कला**' की अभिव्यक्ति हेतु ही सम्भवतः मृदंग या तबले की चाप पर अनिबद्धता की समाप्ति दर्शाते है एवं ज्योंहि ताल शब्द एवं स्वरों का समन्वय होता है, रसिक मन उल्लसित और उत्तेजित हो उठता है। तालों में गतिभेद उत्पन्न कर रस–निष्पंत्ति होती है। करूण, श्रृंगार, रौद्र, वीभत्स आदि रसों के लिए तालों की विभिन्न गतियों का बड़ा महत्व है। **'संगीत रत्नाकर'** व **'नारदार्थ रागमाला'** में कहा गया है कि जिस प्रकार देह में मुख प्रधान है और मुख में नासिका, उसी प्रकार तालविहीन संगीत नासिकाविहीन मुख के समान है।

'भक्ति–रत्नाकर' के रचयिता श्री नरहरि चक्रवर्ती के अनुसार जिस प्रकार बिना पतवार के नाव होती है वैसे ही तालविहीन संगीत होता है एवं तालविहीन संगीत को अशुद्ध भी कहा गया है–

गीते तालयुक्त ताल बिना शुद्धि नय।
जैछे कर्णधार बिना नौका तैछे हय।।

काव्य में छंद एवं संगीत में ताल का उद्‌भव स्वाभाविक रूप से हुआ क्योंकि आदिमानव ने नदियों – झरनों के शाश्वत प्रवाह में, क्रमिक सूर्योदय, सूर्यास्त में ऋतुओं के नियमित चक्र में, जीवन के क्रमिक विकास में इनका अनुभव किया होगा इन्हीं लयों की गति भाषा का आश्रय लेकर साहित्य में छंद और संगीत में ताल बनकर प्राण फूंकने लगी । समस्त विश्व , ब्रह्माण्ड लय गति से बंधा है । सभी चर और अचर एक निश्चित क्रम के अनुसार इनसे संचालित होते है। प्रकृति में समय की जो निश्चित गति है, वही संगीत में ताल बनकर उसे उपयोगी, रसपूर्ण, स्थायी स्वरूप देती है। दैनिक जीवन में सभी अपना कार्य निश्चित समय पर करते है। समय अखण्ड है किन्तु उसकी उपयोगिता की वृद्धि के लिए उसे घण्टों, प्रहरों, दिनों, महीनों एवं वर्षो में विभक्त किया गया है। ब्रह्मा द्वारा सृजित प्रकृति में समय–क्रम की जो निश्चित गति है, वही संगीत में ताल बनकर उसे उपयोगी, रसपूर्ण और स्थायी स्वरूप देती है। तालों की रचना मूलतः बौद्धिक है। ताल संगीत में चमत्कारपूर्ण चयन–शैलियों का विकास करता है। जिस प्रकार काव्य में अभिधा, व्यंजना, लक्षणा आदि शब्द शक्तियां है उसी प्रकार 'ताल' द्वारा संगीत में चलन–शैलियों का सृजन एवं विकास होता है। मौलिक तत्वों से समन्वित होकर उनकी कला चौगुनी प्रभावोत्पादक शक्ति से समृद्ध होती है गीत में ताल की इन्हीं चलन–शैलियों के द्वारा संगीत को सौन्दर्यपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण बना दिया जाता है।

संगीत में रस–निष्पत्ति ताल के बिना संभव नहीं। रौद्र रस से प्रेरित होकर भगवान् शिव ने ताण्डव नृत्य किया होगा, उस समय ताल गतियों का प्रयोजन अनिवार्य रूप से हुआ होगा। प्राचीन काल से वीर रस की निष्पत्ति के लिए जिन सांगीतिक ध्वनियों का प्रयोग हुआ है, उनमें गतिभेदों के कारण ही रस का उद्रेक सम्भव होता है। तालहीन संगीत केवल करूण रस की निष्पत्ति में समर्थ होता है एवं वह भी कोमल स्वरों की संगति से। ताल के विभिन्न गतिभेदों के बिना अन्य किसी भी रस की निष्पत्ति सम्भव नहीं है। काव्य में जिस प्रकार छंद की विविधता के द्वारा विभिन्न रस प्रदर्शित होते है, उसी प्रकार विभिन्न तालों का आधार लेकर भारतीय संगीतज्ञ विविध रस–निष्पत्ति या रसानुभूति कराने में समर्थ होते है। नाटक, मूलाभिनय आदि दृश्यकलाओं में रस–निष्पत्ति के लिए कभी–कभी तालगति को स्वरों की भी आवश्यकता नहीं होती, मंच पर प्रदर्शित अंधकारपूर्ण रात्रि के भयावह दृश्यों में केवल किसी वाद्य के मृदु या तीव्र आघातों से उत्पन्न ध्वनिप्रवाहों के द्वारा ही रस–निष्पत्ति सम्भव होती है।

संगीत के मूल्यांकन हेतु भी 'ताल' का उपयोग किया जा सकता है। कहा जाता है कि बेसुरा गायन क्षम्य है, लेकिन बेताला नहीं। अर्थात् स्वर से किंचित् स्खलित संगीत भी ताल के कारण रसिकों को अप्रिय नहीं लगता किन्तु मधुर संगीत भी बेताला होने पर अप्रिय हो जाता है। वास्तव में संगीत का छंद ताल है और यह केवल भारतीय संगीतमें नहीं बल्कि सम्पूर्ण संसार के क्रमिक विकास में निहित है। विलर्ड ने भी इसकी सार्थकता सिद्ध की है। शेक्सपियर ने भी संगीत में समय विभाजक ताल का गुणगान किया है। भारतीय शास्त्रों में उल्लिखित है कि ताल के द्वारा मनुष्य मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। इससे अधिक उसकी विशेषता और क्या हो सकती है।

''तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गम् स गच्छति''

ताल के प्रभाव से संगीत मर्यादा में बंध जाता है। जब वह ताल के साथ चलता है तभी उसके संगीत में आकर्षण उत्पन्न होता है। यही कारण है कि संगीत धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दिलाने वाला सिद्ध किया गया है।

''धर्मार्थकाममोक्षणामिदमेयैकसाधनम्।।''

चित्रकला में भी संगीत की भांति ताल या प्रमाण उतना ही महत्वपूर्ण है। 'चित्रसूत्रम' में 12 अंगुल के विस्तार को एक ताल कहा गया है। इसी माप से समस्त मानवाकृतियों की नाम विभिन्न प्रमाणों में प्रस्तुत कर उसे सुडौल पुष्ट एवं स्वस्थ रूप प्रदान किया जाता है। हंस पुरूष, भद्र पुरूष, मालव्य पुरूष, रूचक पुरूष और शशक पुरूष की आकृतियों के लक्षण, लम्बाई, चौड़ाई अनुपात आदि का वर्णन है।

हंस पुरूष –108 अंगुल ऊंचा
भद्र पुरूष –106 अंगुल ऊंचा
मालव्य–104 अंगुल ऊंचा
रूचक–100 अंगुल ऊंचा
शशक – 90 अंगुल ऊंचा

तलमान अर्थात प्रमाण से ही यह सम्भव है कि आकृतियां रोचक और स्वाभाविक होंगी। विभिन्न प्रकार की आकृतियों के ताल होते है जिनसे उन्हें भलीभाँति जाना जा सकता है। नवताल आदि का भी प्रावधान किया जाता है। नवताल में निर्मित आकृतियां अच्छी मानी गई है। मूर्ति, स्थापत्य एवं अन्य कलाओं में भी तालबद्धता होती है। प्रत्येक स्वरूप छंद और तालमान से निर्धारित हो जाता है।

४. सारांश

संगीत हो या जीवन, चित्र हो या मूर्ति, लयविहीन होने पर कृति निष्प्राण लगती है। बाह्य प्रभाव लय की गति पर अपना असर छोड़ते है जिनमें प्रतिकूलता एवं अनुकूलता का प्रभाव होता रहता है। मनुष्य अपनी इच्छाओं और भावनाओं का विकास इसी क्रम में फिर–फिर आते है, और मनुष्य आंतरिक रूप से उन्हें महसूस करते हुए भी बाह्य जगत में उनकी ऐसी सुनियोजित व्यवस्था करता है कि जिससे उसका जीवन–क्रम, सुलभ, व्यवस्थित एवं लयात्मक हो जाता है।

कला में संयम के आधार पर शिवम् अथवा कल्याणकारी भावनाओं का महल निर्मित हो सकता है। संगीत में इस संयम का ताल के स्वरूप में प्रदर्शन होता है। अति प्राचीनकाल से ही गीत, नृत्य–संगीत को ताल द्वारा संतुलित करने की परम्परा रही है। संगीत का ताल रूपी संयम ही यह नियंत्रित करता है कि विलंबित गायन, वादन या नृत्य इतना अधिक विलंबित न हो जाए कि रस–निष्पत्ति कठिन हो जाए और न इतनी द्रुत हो जाए कि गति की चकाचौध में कला का सौष्ठव ही नष्ट हो जाए। जिस प्रकार लावण्य योजना चित्रकला में कार्य करती है उसी प्रकार संगीत में ताल स्वच्छ संगीत को नियंत्रित करता है।

संदर्भ और टिप्पणियां

१. भारतीय संगीत वाद्य–डॉ. लालमणि मिश्र, पृ. 1
२. कला विवेचन – डॉ. कुमार बिमल, पृ. 11
३. संगीत में वृत्ति एवं गीति – डॉ0 इन्द्राणी चक्रवर्ती, द्रष्टव्य निबन्ध–संगीत, पृ. 452
४. “It is movement generated and regulated by harmonious restriction, this is the creative force in the hand of the artist .” The religion of an Artist by R.N. Tagore.
५. Rhythm denotes a thought and there is will as well as purpose behind rhythm and its vital part is intention and power, it is an act or play the role of eternal succession of time. Macdawal (Edward).
६. इन्साइक्लोपीडिया ऑफ आर्ट्स–रिद्म।
७. हिन्दी साहित्य कोश–लय
८. The principale that governs the movement of eye from one part or unit of a design to another is known as rhythm. Applied Art hand book, page 24.
९. “In Art rhythm means an easy, connected path along which the eye may travel in Any arrangements of lines, forms or colours.” H. and V. Goldstein. Art in everyday life, page 108.
१०. The essential rhythm, immediate and inevitable at the impact of an aesthetic thrill, may be called the life movement. The character and quality of the particular rasa lies thercin.
११. रेखा व वर्तना भूषणं वर्णमेव च ।। 10/40।।
१२. डॉ. अरूण कुमार सेनः भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, पृ. 7
१३. स्वामी प्रज्ञानंदकृत : संगीत और संस्कृति भाग 2. पृ. 30
१४. डॉ. अरूण कुमार सेनः भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, पृ. – 8.
१५. ‘‘ताल अंक’’ – संगीत पत्रिका, संगीत कार्यालय हाथरस, डॉ. एस.एन. राककर, पृ. 14–15

१६. ताल शब्दस्य निष्पत्तिः प्रतिष्ठार्थेनधातुना। गीतं, वाद्यं च नृत्यं च भाति ताले प्रतिष्ठितम्। तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोधज स्मृतः।गीतं, वाद्यं च नृत्यं च भाति ताले प्रतिष्ठितम्।
१७. डॉ. अरूण कुमार सेन– भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, पृ. 49